ISSN : 2395-4132

THE EXPRESSION

An International Multidisciplinary e-Journal

Bimonthly Refereed & Indexed Open Access e-Journal

Impact Factor 3.9

Vol. 6 Issue 1 February 2020

Editor-in-Chief : Dr. Bijender Singh

Email : editor@expressionjournal.com

www.expressionjournal.com

The Expression: An International Multidisciplinary e-Journal
(A Peer Reviewed and Indexed Journal with Impact Factor 3.9)
www.expressionjournal.com ISSN: 2395-4132

मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन के अन्तर्गत जीवन की दार्शनिक व्याख्या, श्रीमद्भगवत गीता के विशेष सन्दर्भ में :–एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

कनक मिश्रा
शोध छात्रा : इतिहास, शाहजहॉपुर (उत्तर प्रदेश)

Abstract

जीवन एक समष्टि है। शरीर और आत्मा दोनों के संयुक्त समूह का नाम जीवन है और दोनों के वियोग का नाम मृत्यु है। बिना शरीर के आत्मा शक्ति विहीन है और आत्मा के बिना शरीर, शव के रूप में जड़ व चैतन्य विहीन है। हम किसी के शरीर को जीवन के नाम से नहीं पुकार सकते है और ना ही उसकी आत्मा को। दोनों का समष्टि ही को जीवन कहा जाता है। इसी प्रकार यह विशाल सृष्टि भी एक शरीर और आत्मा है। सृष्टि की अवस्था में वे संयुक्त तथा प्रलय की अवस्था में वियुक्त रहते हैं।

सृष्टि का शरीर, प्रकृति और आत्मा, परब्रहमा या परमात्मा है। इन्हीं दोनों तत्वों को ही चित् व अचित्, प्रकृति और पुरूष, ब्रहमा और माया, आत्मा और शरीर तथा अन्य कई भिन्न–भिन्न नामों से जानते है। इन्हीं दोनों की समष्टि का नाम संसार है। प्रस्तुत शोध पत्र में जीवन की दार्शनिक व्याख्या को श्रीमद्भगवत् गीता के प्रस्तुत सन्दर्भ में विश्लेषणात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है।

Keywords

परिश्रमी, समष्टि, संयुक्त समूह, प्रलय, दार्शनिक, चैतनय विहीन, आत्मा, सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर, स्पर्श इत्यादि।

The Expression: An International Multidisciplinary e-Journal
(A Peer Reviewed and Indexed Journal with Impact Factor 3.9)
www.expressionjournal.com ISSN: 2395-4132

मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन के अन्तर्गत जीवन की दार्शनिक व्याख्या, श्रीमद्भगवत गीता के विशेष सन्दर्भ में :–एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

कनक मिश्रा

शोध छात्रा : इतिहास, शाहजहॉपुर (उत्तर प्रदेश)

शोध पत्र – प्राचीन काल से ही देवभूमि भारतवर्ष में जीवन को अध्यात्म के आधार पर परिभाषित एवं स्वीकार किया गया है। जेसा कि हम जानते है कि शरीर और आत्मा की समष्टि को ही जीवन कहा जाता है, यहॉ पश्चिमी संसार ने शरीर को ग्रहण किया और प्राची ने उसकी आत्मा को। शरीर भौतिक व दृष्टिगोचर है। अतः इसमें दृष्टि गणना तथा जॉच की गुंजाइश बनी रहती है। अतः यह विज्ञान का विषय है, आत्म तत्व स्थूल इन्द्रियों से नही देखा जा सकता है, यह गम्भीर विचार तथा सूक्ष्म बुद्धि का विषय है, जो कि दर्शन का विषय है। पश्चिम विज्ञान की ओर झुका, पूर्व दर्शन की ओर।

पश्चिम सृष्टि के शरीर तत्व अर्थात प्रकृति का विश्लेषण करने लगा तथा पूर्व दार्शनिक सिद्धान्त के आधार पर आत्मा का अन्वेषण करने लगा। प्राची ने शरीर के सौन्दर्य के अन्तर्गत अध्यात्मवाद की रूपरेखा देखी। पश्चिम की सर्वश्रेष्ठ नायिका हेलेन में हम शारीरिक सौन्दर्य की प्रधानता पाते हैं, किन्तु पूर्व की सर्वश्रेष्ठ नायिका सीता का सौन्दर्य उसकी पवित्र आत्मा का दिव्य प्रतिबिम्ब मात्र हैं। हेलेन हमारे सामने भोग्या नारी के रूप में दृष्टिगत होती है और सीता परम पूज्या के रूप में।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कि जीवन एक समष्टि है। शरीर और आत्मा दोनों के संयुक्त समूह का रूप है। मृत्यु के समय स्थूल शरीर से हमारा वियोग हो जाता है, किन्तु सूक्ष्म शरीर, मृत्यु के बाद स्वर्ग, नर्क अथवा पुनर्जन्म की अवस्था में भी हमारे साथ में रहता है। हमारे कर्मो के संस्कार इसी सूक्ष्म शरीर पर अंकित रहते हैं। और यही सूक्ष्म शरीर स्वर्ग–नरक, पुनर्जन्म तथा भवसागर के भव बन्धन का कारण होता है। सूक्ष्म शरीर से छुटकारा पाना ही मोक्ष कहलाता है। जिसका कारण है कि शरीर तो जीवात्मा के साथ सदैव ही लगा रहता है। गीता में एक श्लोक है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं में भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

अर्थात सृष्टि की रचना प्रकृति के आठ अवयवों से हुई है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पॉच स्थूल तत्वों से स्थूल शरीर का निर्माण तथा मन, बुद्धि और अंहकार इन तीन सूक्ष्म तत्वों से सूक्ष्म शरीर का निर्माण हुआ है। हमारे असंख्य पुर्नजन्म तथा योनि परिवर्तनों का कारण यही मन, बुद्धि व अहंकार से बना सूक्ष्म शरीर है। हमारे कर्मो की छाप इसी सूक्ष्म शरीर पर पड़ती है। हमारा वर्तमान जीवन हमारे अतीत जीवन का फल और भविष्य जीवन का बीज है। यह आश्चर्य की बात है कि हमारे पूर्वजन्म का कर्म किस प्रकार हमारे वर्तमान जीवन को प्रभावित करता है। साधारणतयः कर्म, स्थूल शरीर द्वारा ही किये जाते हैं और मृत्यु के समय स्थूल शरीर नष्ट हो जाता है। फिर स्थूल शरीर का किया गया कर्म नष्ट क्यों नहीं होता है और किस प्रकार हमारे प्रारब्ध और संस्कार के रूप में दूसरे जन्म पर भी प्रभाव डालता है। कर्म स्वतः ना तो अच्छा है और ना ही बुरा। कर्म का लक्ष्य ही उसका अच्छा या बुरा सिद्ध करता है। जब भी हमारे द्वारा कर्म किया जाता है तो ज्ञानेन्द्रियाँ तथा स्नायु जाल की ज्ञान तन्तुयें मस्तिष्क को सूचनायें देती है जिससे हमारे वृहत् मस्तिष्क में कम्पन होता है। मानसिक जगत में उथल–पुथल की स्थिति बनती है। और सूक्ष्म शरीर पर एक गहरी छाप पड़ जाती है। कर्म का संस्कार अंकित हो जाता है। यही संस्कार हमारा प्रारब्ध बन जाता है। स्थूल शरीर के नष्ट होने पर भी सूक्ष्म शरीर हमारे साथ ही रहता है और यही सूक्ष्म शरीर अपने पूर्व जन्म का कर्म संस्कार प्रवृत्ति के रूप मे ले आता है एवं प्रवृत्ति अज्ञात रूप

में हमारा पथ प्रदर्शन करती है। यदि कर्म करने पर भी हमारे सूक्ष्म शरीर में कोई लहर या तरंग उत्पन्न नहीं होती है तथा हमारे मस्तिष्क जगत में कोई उथल पुथल न हो, तो ना ही कर्म हमारे लिये बन्धन का कारण हो सकते हैं और ना ही पाप या पुण्य हो सकते हैं। उदाहरण के लिये–किसी नग्न युवती का दर्शन या उसके वक्षःस्थल का स्पर्श पाप है, क्योंकि इन कर्मो से मन में विकार उत्पन्न होता है, जिससे सूक्ष्म शरीर पर एक छाप पड़ जाती है। किन्तु यदि किसी नवजात शिशु के सामने स्त्री, नग्न अवस्था में आ जायें या अन्जाने में किसी व्यक्ति का हाथ वक्षःस्थल से छू जाये तो कोई पाप का भागी नहीं हैं। क्योंकि किसी के सूक्ष्म शरीर में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ। इसी प्रकार कोई व्यक्ति किसी नवयुवती की उँगली का स्पर्श भी कामवासना से कर ले तो वह पाप का भागी होता है। किन्तु यदि नवयुवती के स्तनों पर घाव हो तो चिकित्सक द्वारा वक्षःस्थल का स्पर्श करें तो कोई पाप नहीं है। क्योंकि पहले कर्म में सूक्ष्म शरीर में कामवासना की लहर उत्पन्न हुई और दूसरे कर्म में कर्तव्य की भावना थी।

हमारा सूक्ष्म शरीर मन, बुद्धि, अहंकार तीन तत्वों से निर्मित है। पूर्व जन्म के सभी खेल इन्हीं तत्वों के न्यून या अधिकता पर निर्भर हैं। अहंकार पहला तत्व है। और इसी से हमें स्वार्थ, ममत्व (अपनापन), अहं की भावना आती है। निर्जीव व सजीव में यहीं अन्तर है कि निर्जीव में अहमं की भावना नहीं रहती है और सजीव में रहती है।

सूक्ष्म शरीर का दूसरा तत्व मनस्त तत्व है। मनस्तत्वः से प्रवृत्ति, इच्छा, सुख–दुख का अनुभव तथा कल्पना की प्रेरणा मिलती है। पशु योनि में अहंकार व मन, दो तत्वो की प्रधानता रहती है।

सूक्ष्म शरीर का तीसरा तत्व बुद्धि है। बुद्धि, विवेक की जननी है। और कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय लेती है। मनुष्य योनि में सम्पूर्ण शरीर मन, बुद्धि व अहंकार तीनों विकसित रूप में पाये जाते हैं। पशुओं को कर्म करने की प्रेरणा प्रवृत्ति से मिलती है। मनुष्यों को बुद्धि तथा विवेक से। पशु यह नहीं समझता कि जीवन को उन्नत बनाने के लिये, प्रेम और त्याग की कितनी आवश्यकता है। यह मानवता की पुकार है। पशुता तो प्रवृत्ति का ही दूसरा नाम है। यदि हम अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कार्य करते हैं तो हममें पशुता की प्रधानता है और यदि हम कर्तव्य की प्रेरणा से विवेक की

कसौटी के आधार पर कर्म करते हैं तो वह पशुता पर मानवता की विजय है।

जीवन का विकासवाद हमें जीवन के सोपान की ओर संकेत करता है। जीवन के मुख्यतःपांच स्तर होते है। दो को मानव पार कर चुका है। अभी तीसरे में वर्तमान है, किन्तु दो उन्नत स्तर हमारे आगे है।

अभी हम जीवन के विकास के मध्य में हैं। जीवन के प्रथम सोपान वृक्षयोनि में अहंकार जागृत तथा मन और बुद्धि न्यूनाधिक मात्रा में सुषुप्त रहते है। जीवन के द्वितीय सोपान में बृद्धि तत्व न्यूाधिक मात्रा में सुषुप्त एवं मन तथा अहंकार जागृत अवस्था में रहते हैं। मनुष्य योनि में ये तीनों तत्व जगे रहते हैं। अभी हम भूलोक के स्तर में हैं। दो उन्नत स्तर भुवर्लोक व स्वलोक हमसे आगे हैं। भूवर्लोक में अहंकार सो जायेगा केवल बुद्धि और मन जाग्रत रहेगें। स्वलोक में मन और अहंकार दोनों सो जायेगें, केवल बुद्धि जाग्रत रहेगी। जीवन के विकास में वृक्षयोनि निम्नतम है और देव योनि उच्चतम। अहंकार में तम की प्रधानता है, मन में रज की तथा बृद्धि में सत्व की। मन, बुद्धि, अहंकार इन्हीं तीनों गुणों में सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीनों गुण विद्यमान में रहते हैं। मनुष्य योनि में सत्व, रज, तम –तीनों की : भुवर्लोक के स्तर में जो मनुष्य योनि और देव योनि दोनों के बीच का जीवन हैं, सत्व और रज कीः तथा देव योनि में केवल सत्व की प्रधानता रहती है। गायत्री इसी भुवर्लोक और स्वलोक की ओर संकेत करती है। ''ओ3म् भूर्भुवः स्वः'' हमें याद दिलाता है कि जीवन के नीचे के सोपानों को मत देखों। जीवन के ऊपर के दो स्तरों की ओर देखो। गायत्री का संकेत पशुता के उपर मानवता की विजय है। पशुता में प्रवृत्ति की प्रधानता है, मानवता में विवेक की।

जब जीव सूक्ष्म शरीर से अर्थात मन, बुद्धि, अहंकार से अथवा सत्व, रज और तम से पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाता है, तभी वह मुक्त कहलाता है। गीता का यह श्लोक यहीं संकेत देता है–

''ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं,
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

अथवा

आब्रहमाभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

मोक्ष मार्ग किधर है, और सूक्ष्म शरीर से किस प्रकार छुटकारा प्राप्त करे? सूक्ष्म शरीर का विकास कर्म –संस्कार से होता है। हमारे द्वारा किये गये अच्छे या बुरे कर्म हमारे सूक्ष्म शरीर पर छाप या प्रभाव डालते है। इसी का नाम आसक्ति है। यदि हम अनासक्त या निर्लिप्त होकर केवल कर्तव्य की प्रेरणा से कार्य करें। जिससे हमारे अन्तः मन में कोई हलचल उत्पन्न ना हो तो सूक्ष्म शरीर का विकास नहीं होगा और ना ही उसके कर्म संस्कारों से हमारी प्रवृत्ति ही बनेगी। यदि हमारे सूक्ष्म शरीर का विकास रूक गया तो प्रारब्ध भोगने के पश्चात् हम मुक्त हो जायेगें। गीता में कहा गया है कि–

यस्यनाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।।

हृत्वादि स इमॉलोकान्न हन्ति न निंबध्यते।। 1 ।।

अथवा

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न में कर्मफले स्पृहा।। 2 ।।

इसी का नाम कर्मयोग है। किन्तु कर्मकाण्ड इससे भिन्न है। कर्मकाण्ड सकाम है, कर्मयोग निष्काम है। कर्मकाण्ड हमें स्वर्ग दे सकता है, लेकिन हमारे सूक्ष्म शरीर का विकास नहीं रोक सकता है। यदि शरीर कर्म अच्छा होने पर भी मन पवित्र नहीं होता है तो कोई लाभ नहीं है। इसी प्रकार यदि हम कर्मेन्द्रियों को विषय भोगने से रोक कर उनका चिन्तन करते रहते हैं तो हम मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर नहीं हो सकते हैं।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।

इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।। 1।।

अथवा

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।

रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्टा निवर्तते।। 2।।

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि जीवन शरीर और आत्मा दोनो की समष्टि है। किसी ने जीवन में अथवा सृष्टि में शरीर को देखा, किसी ने आत्मा को। शरीर स्थूल है, इसलिये कर्म का विषय हैं। आत्मा सूक्ष्म है, इसलिये ज्ञान का विषय है। शरीर में हम मूर्त सुन्दरता की झलक देखते हैं, इसलिये शरीरिक कर्म से रस और आनन्द की सृष्टि होती है।

आत्मा का ज्ञान शुष्क और नीरस व विचार का विषय है। वेद के पूर्वभाग संहिता और ब्राहमण ने कर्म को अपनाया है तथा वेद के उत्तर भाग, उपनिषद् और आरण्यक ने ज्ञान को लिया।

माता कर्म का प्रतीक है और पिता ज्ञान का। गीता के श्लोक में लिखा है कि–

लोकेऽस्मत् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्

कर्म और ज्ञान दोनों मोक्ष के मार्ग हैं, किन्तु इन दोनों में से प्रत्येक एकांकी है, अतः अधूरा है। मानव ना तो केवल शरीर है और न केवल आत्मा, बल्कि दोनों की समष्टि है। ना तो हम माता की अवहेलना कर सकते हैं और ना ही पिता की। ना तो हम कर्म को छोड़ सकते हैं ना ही ज्ञान को। ना हम संसार का तिरस्कार कर सकते हैं ना ही परमात्मा का। श्री रामानुज आचार्य जी ने अपने श्रीभाष्य में कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनों का संमिश्रण कर उस पर भक्ति योग का आवरण दे दिया। (कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग) रामानुज का विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा–कर्म और ज्ञान दोनों पर अवलम्बित है।

श्री शंकराचार्य जी ने संसार को मिथ्या और भ्रम मात्र समझा है, अतः उनकी दृष्टि में स्त्री, पुत्र, धन, शरीर सभी भ्रम है। इसलिये शरीर को निरोग व स्वस्थ रखना, द्रव्योपार्जन करना, सन्तानोत्पति करना सभी मन को भ्रमित करने वाले कार्य है। उन्हें तभी तक करना चाहिये जब तक ब्रह्मज्ञान ना हो जाये। लेकिन मनोविज्ञान बताता है कि प्रवृत्ति की धारा को एकाएक नहीं रोक सकते हैं। हमारे अनेक जन्मों के संस्कार हमारी प्रवृत्ति में एकत्रित हो गये है। कर्मेन्दियों को बलपूर्वक हम रोक सकते है, लेकिन प्रवृत्ति की छाप सूक्ष्म शरीर पर अंकित होती है। हम उसे सर्वथा नहीं मिटा सकते है। किन्तु प्रवृत्ति की धारा में निश्चेष्ट होकर बहते रहना तो पशुता है, प्रवृत्ति की धारा तीव्र बेग के साथ ऊपर से नीचे ओर बहती है अर्थात मानवता से पशुता की ओर बहती जा रही है। यदि हम मनुष्य को इस धारा में जोड़ देगें तो यह हमें पशुता के निम्नतम स्तर में ले जायेगी। यदि हम इस धारा बलपूर्वक रोकेगें तो सहसा सफल नहीं हो सकते। प्रवृत्ति की धारा इतनी प्रबल है कि बलपूर्वक रोकने पर मार्ग बदल कर और भी कण्टकाकीर्ण मार्ग से बहने लगती है। पहला मार्ग अनुचित है, तो दूसरा

असम्भव है पहले की झलक बार्हस्पत्य–दर्शन में मिलती है, दूसरे की श्रीशंकराचार्य के ज्ञानमार्ग में। चार्वाक के भौतिकवाद ने प्रवृत्ति पथ पर अवाध निरंकुश होकर चलने का आदेश दिया है। उन्होने यह कहा है–

याज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।।

उन्होने कामनी और कंचन के बीच रसना तथा उपस्थ को मुक्त होकर चिन्तन की अनुमति दी है। इधर निरे निवृत्तिवाद सिद्धांत विवाह, भोजन तथा गृहस्थ धर्म तक को अनुचित ठहराकर संसार को मिथ्या बताकर, संसार तथा प्रवृत्ति को सर्वथा त्याग करने को कहते है। श्रीरामानुज आचार्यजी ने बताया है कि ना तो हम केवल प्रवृत्तिकी धारा में वह सकते है, क्योंकि वह पशुता की ओर ले जाती है, और न हम प्रवृत्ति की धारा की रोक ही सकते है, क्योंकि प्रवृत्ति, प्रकृति का ही सूक्ष्म रूप है और प्रकृति के साथ संघर्ष में हम विजय प्राप्त नहीं कर सकते है। हमें प्रवृत्ति के साथ चलना चाहिये, किन्तु प्रवृति को परिमार्जित कर लेना चाहिये। भोजन तथा अन्य भोग हम नहीं छोड़ सकते है, पर विषय भोग की लालसा से नहीं–मौज उड़ाने के ख्याल से नहीं, किन्तु कर्तव्य की प्रेरणा से विवेक की आज्ञा से हमे वे कार्य करने चाहिये। स्वादिष्ट भोजन हम कर सकते हैं परन्तु केवल शरीर स्वास्थ्य के लिये। स्त्री–सहवास हम कर सकते हैं परन्तु केवल विवाहित पत्नी के साथ वह भी नियम व संयम के साथ संतानोपत्ति के लिये। सदुपयोग हेतु धन का उपार्जन हम कर सकते हैं। गृहस्थ जीवन के सभी कार्य हम कर सकते हैं, परन्तु निष्काम, कर्तव्य की प्रेरणा से। केवल भगवत्प्रीत्यर्थ। गीता के श्लोक में लिखा है–

सांख्ययोगौ पृथ्ग्वालाःप्रवदन्ति ना पण्डिताः

प्रवृत्ति को सर्वथा रोकने की चेष्ठा करते हुये प्रकृति को शत्रु बनाकर हम मोक्षमार्ग में हम जितनी ही दूर तक अग्रसर हो सकते हैं, उससे कही आगे प्रकृति को मित्र बनाकर कर सकते हैं। क्योंकि प्रकृति से संघर्ष करने में जो शक्ति अपव्यय होगी उतनी शक्ति के सदुपयोग से हम परमात्मा के और भी समीप पहुॅच सकते हैं।

वृक्षयोनि और पशुयोनि भोगयोनि है और मनुष्य कर्मयोनि है। वृक्ष व पशु अपने पूर्वजन्म के कर्म के फल से प्रेरित होकर भोग करते हैं। ये नवीन कर्म संस्कार का निर्माण नहीं करते है। मनुष्य, कर्म के लिये स्वयं जिम्मेदार हैं क्योंकि उसके पास बुद्धि तत्व है। मनुष्यों में भी शिशु, पागल

या सोये हुये व्यक्ति अपने कर्म के लिये जिम्मदार नहीं होते। क्योंकि शिशु का बुद्धि तत्व पूर्ण विकसित नहीं रहता, पागल का निष्चेत रहता है ओर सोये हुये का सुषुप्त। प्रवृत्ति का स्थान मनस्तत्व में है। अतः शिशु, पागल या सोये हुये व्यक्ति में भी प्रवृत्ति कार्यरत रहती है।

संसार प्रतिक्षण परिवर्तित होता है। जीवन चंचल है, किन्तु हम यह जांच सकते है कि हम किधर चल रहे हैं। यदि हमारे जीवन में अभिमान, जड़ता, अकर्मण्यता, तथा स्वार्थ की मात्रा अधिक है। तो तमोगुण की अधिकता के कारण वृक्षयोनि मे जायेगे। यदि जीवन में प्रवृत्ति, भोगलिप्सा, तथा कामना की मात्रा अधिक है तो रजोगुण की प्रधानता के कारण पशुयोनि में, और प्रवृत्ति और भोग लिप्सा के साथ विवेक भी है तो मनुष्य योनि में जी रहे हैं। यदि पशुता के ऊपर मानवता अर्थात विवेक की विजय हो गई, यदि हमारे सभी कर्म केवल कर्तव्य की भावना से प्रेरित है तो हम इस जीवन के उच्च सोपान पर हैं, भुवलोक तथा स्वलोक की ओर बढते जाते है। हम जीवन कि कितने ऊँचे सोपान पर चले आयें, हम स्वर्ग के कितने करीब है, यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है, हमारे मुख की दिशा किधर है यह विशेष है। जीवन के निम्नतम सोपान पर का व्यक्ति भी यदि स्वर्ग की ओर मुख किये है, तो स्वर्ग पहुॅच ही जायेगा। स्वर्ग के करीब पहुँचकर भी यदि व्यक्ति नीचे की ओर मुख करके चलेगा तो पतन के गर्त में ही गिरेगा।

जब प्रारब्ध का क्षय हो जाता है और संचित कर्मयोग, ज्ञानयोग की अग्नि में जल जाता है तथा क्रियमाण कर्म, अनासक्त कर्मयोग के कारण नवीन संस्कार का निर्माण ही नहीं करता है, तब सूक्ष्म शरीर क्षीण और निर्जीव सा हो जाता है। भक्तियोग और प्रवृत्तियोग सूक्ष्म शरीर के बचे हुये अंश को भी छिन्न–भिन्न कर देता है।

निष्कर्ष–

इस शोध पत्र से स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवत् गीता के अनुसार जीवन सृष्टि एवं आत्मा (स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर) की समष्टि है। सूक्ष्म शरीर के नष्ट हो जाने से पूर्वजन्म व स्वर्ग–नर्क का कोई झंझट नहीं रहता है। हमें स्मरण रखना चाहिये कि जीवात्मा प्रकाश कण है और परमात्मा प्रकाशपुंज। भौतिक विज्ञान का नियम है कि बड़ा पदार्थ छोटे पदार्थ को आकर्षित करता है, यदि छोटा पदार्थ किसी अन्य पदार्थ से बॅधा ना हो। परमात्मा भी जीवात्मा को अपनी ओर खीचता है यदि वह सूक्ष्म शरीर से बॅधा ना हो।

जब प्रकाशकण, प्रकाशपुंज से मिलन के लिये प्रस्थान करता है तो प्रकाश मार्ग सहायता करता है और अन्धकार बाधक।

गीता के श्लोक में लिखा है–

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।

तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रहा ब्रहाविदों जनाः।।

इसीलिये अर्चिरादि मार्ग को मोक्ष मार्ग कहा गया है। ईशावास्योपनिषद् के अन्त में इसी मार्ग पर जाने की प्रार्थना की गई है। रामानुज ने सद्योमुक्ति और शंकराचार्य ने कर्ममुक्ति मार्ग बताया है।

आर्यजाति सदा से प्रकाश की आराधना और प्रकाश का अन्वेषण करती आई है। उपनिषद्वाक्य है कि–

असतो मा सद्गमय, मृत्योर्मामृतम गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।

अन्धकार, अहंकार और पशुता–अज्ञान और तमोगुण का प्रतीक है तथा प्रकाश ज्ञान व मानवता का।

गायत्री आर्य जाति की चिरन्तम प्रार्थना है। गायत्री कहती है–

ओम भूर्भुवः स्वः तस्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य

धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हम सवितादेव के उस पवित्र प्रकाश का ध्यान करते है जो हमारी बुद्धि को प्रकाशित करे। यहॉ सविता का अर्थ सूर्य से करते है, किन्तु सविता का वास्तविक अर्थ परब्रहा परमात्मा हैं।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः।

परमात्मा ही सृष्टि का मूल कारण है परन्तु प्राणी विद्या (Biology) के अनुसार सूर्य जीवन का कारण है सूर्य की किरणों से हमें जीवनशक्ति मिलती है। किन्तु अध्यात्म के अनुसार आकाश में अनेको सूर्य और सौर मण्डल है। सूर्य के अन्तःस्थल में जो प्रकाश और जीवन शक्ति है उसका स्रोत परमात्मा ही है। फिर सूर्य की किरण हमारे शरीर को प्रभावित कर सकती है, किन्तु हमारी बुद्धि को प्रकाशित नहीं कर सकती है। परमात्मा का प्रकाश हमारे अन्तःस्थल

में पैठकर हमारी बुद्धि को उज्जवल तथा ज्योतिर्मय बना सकता है। फिर यदि हमारा अन्तःकरण पवित्र हो गया तथा हमारी बुद्धि प्रकाशित हो गई तो पशुता व अज्ञान हमसे दूर हो जायेगा, तथा जीवन सफल हो जायेगा।

श्रीमद्भगवत् गीता के अनुसार–

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

अर्थात जीवात्मा परमातमा की ही अंश है तथा प्रत्येक प्राणी का शरीर परमात्मा का मंदिर है। द्वेष, हिंसा, अन्याय, बुराई करना परमात्मा की अवहेलना है। सभी के साथ प्रेम, न्याय तथा उपकार करना सर्वोउत्कृष्ट कर्तव्य है तथा यही श्रीमदभगवत गीता का सार है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्री मदभागवत् गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, सन् 2008 द्वादस संस्करण
2. श्री विष्णु पुराण
3. के सी श्रीवास्तव–प्रचीन भारत का इतिहास
4. महाभारत
5. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव–मध्यकालीन भारत का इतिहास (भाग–1), ह्रिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001
6. रोमिला थापर – प्राचीन भारत का इतिहास
7. श्री गरूण पुराण
8. श्री कल्याण अंक
9. श्री भागवत् पुराण
10. श्री गो अंक
11. वर्मा हरिचन्द्र, मध्यकालीन भारत (भाग–2), ह्रिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001
12. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, (लेखक की पुस्तक मिडिवल इण्डियन कल्चर का हिन्दी रूपान्तरण) प्रकाशक शिवलाल अग्रवाल एण्ड क0 अस्पताल मार्ग, आगरा।